ज़िन्दगी का सिस्टम

आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
सम्पादनः नूरे हिदायत फ़ाउन्डेशन

कि़स्त-4

बालिग़ होना या इन्सानी ज़िम्मेदारी का वक़्त

बच्चे की शिक्षा और पालन पोषण हो चुकी, उसे ज़रूरी शिक्षा दे दी गयी, उस के चाल चलन को सुधारा गया, उनमे इबादत व भक्ति का चाव पैदा किया गया और लड़कियों को ठीक तरीक़े पर उनकी ज़िन्दगी के क़ानून का आदी बना दिया गया। मगर अभी वह बालिग़ नहीं है, इस वक़्त में एक तरफ़ वह शरीयत के हुक्म पर चलने से छूट मिली हुई हैं यानि गुनाह उनके खाते में नहीं लिखे जाते। अगर ये सवाब के बारे में मैनें कहा है कि अगर इन में ख़ुद इबादत व भक्ति का चाव पैदा हो गया है तो उन्हें सवाब पाने का हक़ हासिल है। सवाब व अज़ाब (इनाम व सज़ा) के मसले में इस फ़र्क की मुझे एक गवाह हदीसों में भी मिल गया। इमाम जाफ़र सादिक़ (अ०) फ़रमाते हैं, ''मुसलमानों की औलाद ख़ुदा के यहाँ नामज़द नामित है, वह अपने माँ बाप की शफ़ाअ़त/सिफ़ारिश करने वाले हैं और उन्हें सिफ़ारिशी बनाया गया है। इसके बाद जब १२ साल की उम्र हो तो उनके लिए पुण्य/नेकियाँ लिखी जाती हैं और जब बालिग़ हो तो गुनाह लिखे जाते हैं।'' इसमें जो उम्र बतायी गयी है वह वैसी ही है जैसे सिखाने सुधारने के लिए सात साल की जिस को मैने कहा कि यह निश्चित और अटल जैसी नहीं है बल्कि लगभग है। उसी तरह यह भी मतलब है कि शुरू में ६-७ साल की उम्र में जब से बताने, सिखाने और इबादतों की आदत डालने का हुक्म हुआ उस वक़्त इनमें ज़्यादा वह ख़याल विचार उनके दिमाग़ में बैठे नहीं होते कच्चे होते हैं और न ही उन्हे इतनी समझ और पहचान ही होती है कि वह इबादत को भक्ति समझ कर करें। इसलिए जिस तरह उन पर गुनाह नहीं है, उसी तरह सवाब भी इनके लिए नहीं है, लेकिन इसके बाद कुछ समय में वह ज़माना आ जाता है जब वह इबादत को इबादत की तरह कर सकते हैं। ये सिखाना शुरू करने की उम्र यानि ६ या ७ साल की उम्र और बालिग़ होने का वक़्त यानि १५ साल के बीच का एक वक़्त है, इसलिए उसके लिए १२ साल की उम्र अन्दाज़े के तौर पर बतायी गयी है।

बालिग़ होने से पहले की उम्र में वह वाजिब और हराम की ज़िम्मेदारी के बोझ से हल्के रखे गये हैं। क्योंकि उनकी समझ अभी पक्की नहीं हुई है, इसके अलावा इनके माल और मिलकियत में उनका इस्तेमाल व दख़ल जारी नहीं है। मिल्कियत को हासिल करना तो बालिग़ होने पर निर्भर नहीं है। दूध पीता हुआ बच्चा, बल्कि जब वह माँ के पेट में था, उसके लिए भी स्वामित्व (मालिक होने) नहीं पा सकता था, जैसे अगर कोई इसका नज़दीकी रिश्तेदार मर जाए जिसकी मीरास (छोड़े हुये माल या जायदाद में हिस्सा) का उसे हक़ मिला हुआ है, तो उसका हिस्सा अलग किया जाएगा। जब वह ज़िन्दा पैदा हो तो उसके लिए वह मीरास रखी जाएगी। मगर स्वामित्व या मिल्कियत में से उसका अधिपत्व (कन्ट्रोल) उस वक़्त तक सही नहीं जब तक वह बालिग़ न हो जाए। ये भी उन्हीं के फ़ायदे के लिए है, इसलिए कि नासमझी और भोलेपन में न मालूम कौन सा ऐसा इस्तेमाल कर दें, जो उनके लिये नुक़सान देने वाला हो। जिस पर बाद में उन्हें पछताना पड़े। माली अलावा उनके दूसरे मामले जैसे निकाह वग़ैरह भी भरोसे के नहीं ठहराये गये हैं। बेशक इन सब बातों के लिए उनके वली (अभिभावक) बनाये गये हैं जो उसूल के आधार पर उनके फ़ायदे की देखभाल (हित रक्षा) ख़ुद उन से ज़्यादा कर सकते हैं, यानी उनके बाप और दादा। इस बारे में उन पर यह ज़ोर दिया गया है कि वह बच्चे के फ़ायदे का ध्यान रखें। मगर उनको इस मामले में उनके बड़कपन का लेहाज़ करते हुए एक तरह की हुकूमत दी गयी है, यानी वह अपनी नेक सलाह व सूझबूझ से जो काम उस बच्चे के लिए कर दें उनको मिटा देने का

इसको बालिग़ होने के बाद भी हक़ नहीं है। इन दोनों में से अगर दोनों हैं तो हर एक मुस्तक़िल तौर पर सरपरस्त है। और अगर ऐसा हो जाए कि दोनों एक दूसरे से टकराते काम दें, यानि एक ने उस मिल्कियत को किसी दूसरे के हाथ बेच दिया और ना जानने की वजह से दूसरे ने किसी और के हाथ तो जिसने पहले बेचा वह सही समझा जाये, दूसरा का काम बेकार समझा जाएगा। अगर इत्तेफ़ाक़ से ये इस्तेमाल एक साथ हो जाए तो दादा का हुक्म बाप के ऊपर होगा क्योंकि दादा के हुक्म पर चलना बाप पर वाजिब है।

बेशक तलाक़ का मसला शरीयत ने इतना नाज़ुक ठहराया है कि इस का हक़ पति के अलावा के सिवा और किसी को नहीं है "तालाक़ उसी के हाथ में है जो हाथ पकड़ेगा"। इसलिए बाप दादा भी अपने वली होने के नाते अगर बच्चे का निकाह करें तो फिर वह उसे 'तलाक़' नहीं दे सकेंगे। नाबालिग़ रहते हुए ही बाप के उठ जाने से इन्सान यतीम या यतीम होता है, और बालिग़ होने के बाद यतीमी की हदें ख़त्म हो जाती हैं और फिर उसे यतीम नहीं कहा जा सकता।

बालिग़ होने के लिए शरीयत ने दो तरह से हद बनायी हैः एक उम्र के हिसाब से यानि लड़के को १५ साल पूरे हो जाएं और लड़की को ६ साल। दूसरे हालात के लेहाज़ से यानि मर्द और औरत दोनों में वह बातें पैदा होना जिन से गुस्ल (नहाना) वाजिब हो जाता है।

ये बात ग़ौर करने के वाली है कि बालिग़ होने की बात शरीयत का एक हुक्म है, जिसका नतीजा शरीयत के हुक्मों का लागू होना है। क्योंकि शरीयत के एहकाम् सिर्फ़ वाजिब, हराम, मुस्तहब, मकरूह, जाएज़-नाजायज़ ही को नहीं कहते, ये तो धर्म की भाषा में "एहकाम-ए-तकलीफ़ियाँ" हैं ही लेकिन इनके अलावा भी शरीयत के बहुत से हुक्म हैं, जैसेः नजिस, पाक, निकाह, मालिक होना वग़ैरह-वग़ैरह। इनको 'एहकाम-ए-वज़ईया' (बनाव के) कहते हैं, ये भी शरीयत की तरफ़ से ठहराये जाते हैं। कहा जा सकता है कि बालिग़ होने की बात भी इसी तरह का एक शरीयत का हुक्म है, ऐसे में ज़ाहिर है कि इसका अख़्तियार बिल्कुल शरीयत के हाथ में है। वह जिस चीज़ पर चाहे उस पर हुक्म लगा सकती है। दूसरी सूरत ये है कि वह एक होनी है जिस पर शरीयत की तरफ़ से हुक्म रखे गये हैं और उन हालात का पैदा होना इसे पाने की निशानी है। ऐसे में यह एतराज़ पैदा होता है कि शरीयत की तरफ़ से इसके लिए दो हदें रखा जाना कहाँ तक सही हैं, जबकि वह दोनों बिल्कुल एक दूसरे से लगी बन्धी नहीं हैं, बल्कि एक दूसरे से अलग भी हो जाती हैं। इसके अलावा हवा-पानी, स्वभाव वग़ैरह के लेहाज़ से बच्चे की ख़ासियते अलग-अलग होती हैं। किसी में १४ साल की उम्र में ही वह बात व कन्डीशन पैदा हो जाती है जो दूसरे में १५ साल में होती है और किसी में १६ साल की उम्र में भी ये हालत पैदा नहीं होती। ऐसे में शरीयत की तरफ़ से सबके लिए एक उम्र निश्चित हो जाना कहाँ तक सही है।

इस का जवाब मैं इस तरह पेश करूँगा कि कोई हुक्म जो दिया जाता है इसकी दो सूरतें हो सकती है : एक ये कि कोई एक ख़ास व्यक्ति हो जिससे बात कही जाए और उसके ख़ास हालात की बुनियाद पर उसके ज़िम्मे कोई फ़र्ज़ लागू किया जाए। ज़ाहिर है इस सूरत में तो सिर्फ़ उसी की ख़ासियते और उसके ज़ाती हालात ही उस हुक्म को लागू करने के लिए आधार होगें और वह बिल्कुल निश्चित और एक होगें। इसी तरह अगर कुछ लोगों की तरफ़ हुक्म लागू किया जाए मगर उनकी अपनी अपनी खासियतों के लेहाज़ के साथ उस सूरत में ज़रूरी है कि अगर उन के हालात एक जैसे हों तो एक हुक्म सबके लिए लागू किया जाएगा और अगर इनके हालात अलग-अलग हों तो हर एक के लिए उसी के लेहाज़ से हुकम होंगे, और सबके लिए अलग-अलग हुक्म होंगे। लेकिन दूसरी सूरत ये है कि मक़सद, एक आम (General) क़ानून का लागू करना है, जिसमें लोगों की ख़ासियतों का कोई सवाल ही नहीं है, इस सूरत में अगर उन के हालात आपस में अलग अलग हैं तो उन सबके हालात की एकजुट की तरह (Collectively) सामने रख कर जो बात ज़्यादा में है (Probability) या उनका औसत (Averge) निकाला जायेगा और उसी के हिसाब से हुक्म लागू किया जाएगा। इसमें फिर ये सवाल ही पैदा नहीं हो सकता कि किसी में यह बात पहले हो जाती है और किसी के अन्दर बाद में। मिसाल के तौर पर सरकार की तरफ़ से ज़मीदारों की जायदाद/सम्पत्ति

ज़ब्त कर लेने के बारे में २२ साल की उम्र तय की गयी है, ज़ाहिर है कि उसके लिए कोई न कोइ आधार और उसूल सामने ज़रूर था, यानि २२ की गिनती से कोई ख़ास प्यार नहीं था। न उसका मक़सद इस गिनती से कोई शगुन था, मगर ये बिल्कुल सही है कि वह मेयार (मानक/Standard) हर एक के लिए ठीक २२ ही साल में पूरा नहीं होता है, बल्कि किसी के लिए पहले होता है किसी के लिए बाद में। लेकिन फ़िर भी क़ानूनी हैसियत से आम बात (Generlization) करने के लिए एक उम्र का रख देना ज़रूरी समझा गया। इसी तरह शारदा ऐक्ट में शादी के लिए जो १६ और १८ साल की उम्र रखी गयी है, वह चाहे हमारे हिसाब से ग़लत हो लेकिन फ़िर भी किसी न किसी मान लिये गये मानक (Standard) के आधार पर रखी गयी है। वह मानक बस इतनी ही उम्र में सबके ऊपर बिल्कुल एक जैसा नहीं उतरता। मगर क़ानून का अन्दाज़ ही ये होता है कि इस पर एक, एक में फ़र्क़ का असर न पड़ सके।

अब ग़ौर कीजिए कि वह हालात, जो अस्ल में बालिग़ होने की के लक्षण तय किय गये हैं वह चूँकि अन्दर की चीज़े हैं, और ज़्यादातर ऐसी बातें हैं कि जब तक खुद इन्सान इसको न बताये तब तक इसकी जानकारी नहीं हो सकती, अब अगर सिर्फ़ इन्हीं को बालिग़ होने का मेयार बनाया जाता तो अक्सर उसमें ६ ाोखा हो जाता। और कभी-कभी तो बीमारियों की वजह से वह हालात पैदा नहीं होते या बहुत ज़्यादा उम्र में सामने आते हैं। इसलिए ज़रूरत थी कि इनके अलावा भी कोई मेयार रखा जाए, जिसका समझना आसान हो, इसके लिए बालिग़ होने की एक उम्र रख दी गयी। अब अगर उन दूसरी बातों की जानकारी इस उम्र के पहले ही हो जाए तो वही सुबूत बालिग़ होने के मान लिए जाने के लिए काफ़ी होंगे और अगर बालिग़ होने के लिए बताई गई उम्र में पहुँच गया तो चाहे वह हालात पैदा हों या न हों, शरीयत की तरफ़ से बालिग़ मान लिया जाएगा और उस पर बालिग़ के हुक्म/आदेश लागू होंगे।

बालिग़ होने के बाद की अहम जिम्मेदारियाँ

बालिग़ होने के बाद इन्सान की ज़िम्मेदारियाँ बहुत हैं जिनको दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है : (१) विश्वास या मानने के उसूल (२) करने वाले फर्ज़ (कर्तव्य)। इस दूसरे हिस्से मे फिर दो क़िस्में हैं - (अ) अल्लाह का हक़ यानि इन्सान के अकेले फ़ज़ (ब) लोगों के हक़ या समाजी कर्तव्य इन पर सिलसिले से रौशनी डाली जाए।

ज़िन्दगी के सिस्टम में धर्म की अहमियतः

इन्सान की ज़िन्दगी में विश्वास (मानना) की बड़ी अहमियत है। मज़हब ही वह है जो दुनिया में चैन, शान्ति की वजह बन सकता है, और अलग-अलग गुटों वर्गों में हक़ व अधिकारों और हदों को तय (निर्धारित) करता है। बात ये है कि हर इन्सान ऊँचाई और बड़ाई चाहता है और अपनी इच्छाओं को पाना करना चाहता है और हर इन्सान की इच्छा बेहद हैं। यहाँ तक कि अगर एक इन्सान को पूरी दुनिया भी मिल जाए तो वह चाहेगा कि एक दूसरी दुनिया हो जिसे वह अपने क़ब्जे में ले आए मगर दुनिया और इसके फ़ायदे सीमित हैं, इसलिए अगर एक इन्सान को वह सब कुछ दे दिया जाए जिसे वह पाना चाहता है तो दूसरे सब को ख़ाली हाथ होना पड़ेगा और अगर सब को अपनी-अपनी बेहद चाहतों के पा लेने के लिए आज़ाद छोड़ दिया जाए तो आपस में टकराव होगा और ताक़तों की मुठभेड़ होगी। जिस में हर ताक़त वाला कमज़ोर को मिटा देने की कोशिश करेगा। फिर अगर ये ताक़त और कमज़ोरी कोई हमेशा रहने वाली होती तो अच्छा होता कि एक बार मुक़ाबला होकर फ़ैसला हो जाता। जो ताक़त वाला होता वह ज़िन्दा रहता और जो कमज़ोर होता वह मिट जाता मगर ये दुनिया की ताक़त और कमज़ोरी हवा के झोंकों और झूले के पेन्गों की तरह इधर उधर होती रहती है। एक समय जो ताक़तवाला है वह दूसरे में कमज़ोर हो जाता है और एक वक़्त जो कमज़ोर है वह दूसरे वक़्त में ताक़तवाला होता है। अब जिस शख़्स ने अपनी ताक़त के वक़्त दूसरे कमज़ोर पर ज़्यादती की वह उस कमज़ोर के दिल में रह जाती है और वह मौक़े के ताक में रहता है, जब उसको ताक़त मिल जाती है तो वह उस का बदला लेता है।

मिसाल के लिए एक हट्टा-कट्टा जवान अपने रास्ते में एक कमज़ोर बच्चे को देखता है और उसे ६

ाक्का देकर हटा देता है। ये इस वक़्त एक आम बात थी और उसके लिए आसान, मगर याद रखना चाहिए कि एक वक़्त में ये जवान बूढ़ा होगा और वह बच्चा जवान होगा, अगर उस ने यह एहसास दिल में बाक़ी रखा कि मेरी कमज़ोरी से फ़ायदा उठाकर इस शख़्स ने मुझ पर ज़्यादती की थी तो वह अपनी ताक़त के वक़्त में इस शख़्स से बदला लेने की कोशिश करेगा। अब हो सकता है कि वह बूढ़ा आदमी चीख़े-चिल्लाए और मदद के लिए पुकारे भी, कि मैं मज़लूम पीड़ित हूँ, ये जवान आदमी मुझे मारे डालता है और उस बात को ना जानने वाले या सीधे व भोले-भाले लोग इस बूढ़े की बात का असर लें। मगर सच्चाई ये है कि आप इसकी मज़लूमियत या पीड़ा एक वक़्त के ज़ालिम या अत्याचारी होने का नतीजा है। दुनिया में इस तरह की मिसालें सामने आती रहती हैं। जिस वक़्त आपके हालात अच्छे थे, और ताक़त आपके साथ, तो दुश्मन को कमज़ोर पाकर आपने समझौते के शिकन्जे में इस को जकड़ के इसके माल पर क़ब्जा कर लिया और लावारिस माल की तरह अपने दोस्तों में बाँट दिया। लेकिन जब वह दुश्मन समय पाकर, अपनी ताक़त को बढ़ा कर, अपने पिछले हथियाये गए माल को माँगता है, यानि अपने हक़ को पाने के लिए दावा करता है, और अब हो सकता है कि वह बदले के जोश की वजह से अपने दुश्मनों के ऊपर कुछ ज़्यादती भी कर रहा हो, तो आप गुहार लगातें हैं कि हम पर जुल्म हो रहा है, हम मज़लूम हैं सताये हुये हैं और हमदर्दी के लायक़ हैं और दुनिया भी कहती है कि, हाँ बेशक ये मज़लूम सताये हुये है।

बात यह है कि इन्सान आज को देखता है और वही उस के दिल-दिमाग़ पर असर डालता है और बीता हुआ कल व आने वाला कल चूँकि उसकी आँखों से ओझल हैं, इसलिए उनका असर नहीं पड़ता। उस वक़्त जो भी ज़्यादती कर रहा होगा जल्दी भूलजाने वाले दुनिया के लोग उसी को ज़ालिम कहेंगे, हालाँकि ये देखना ज़रूरी है कि इस जुल्म की वजह क्या हैं। फिर अपने मक़्सद को पाने के अन्दाज़ अलग-अलग होते है, कोई तो नंगी तलवार लेकर सामने आ जाता है और कोई आस्तीन मे छूरी छिपा कर अपने दुश्मनों के सामने आता है। बहरहाल अलग-अलग गुटों की खुदगर्ज़ी और ऊपर रहने की चाह और अपने हक़ को पाने की माँग, हमेशा आपस में टकराव और खींच तान की वजह बनी रही है और रहेगी, क्योंकि इन्सानी ख़्याल के लेहाज़ से उसका हक़ भी उसकी चाहतो के साथ जुड़ा हुआ है, जिसे जिस चीज़ की चाह है वह उसी को अपना हक़ समझता है और उसी को पूरा करना चाहता है। ऐसे में सब को उनका हक़ नही मिल सकता और सब को पूरी आज़ादी नही हो सकती है। अब एक सूरत ये है कि एक को पूरी आज़ादी दे दी जाए और दूसरों को क़ैद कर दिया जाए, मगर ये वही कर सकता है जिसको इस एक के साथ कोई तरफ़दारी और रिश्तेदारी हो, बहरहाल अक़्ल और इन्साफ़ की रौशनी में ये सूरत कुबूल करने वाली नहीं है, दूसरी सूरत ये है कि सबके हिस्से बाँट की आज़ादी हो और सबका हक़ किसी ऊपरी ताक़त की तरफ़ से बाँट दिया जाए, जिस की वजह से आपस में टकराने की गुन्जाइश ख़त्म हो जाती है मगर ये बँटवारा और करे कौन? और कौन हिस्सा लगाये क्योंकि दुनिया में अलग-अलग तरह से अलगाव है और कोई आदमी भी हो उसे किसी एक इन्सान या गुट से ज़्यादा लगाव और दूसरों से कम लगाव होना ज़रूरी है और इस लेहाज़ से तरफ़दारी की गुन्जाइश पैदा हो जाती है। फिर हर गुट की जरूरतें और उनके हक़ की बराबर से किसी को जानकारी नहीं हो सकती, इसलिए ज़रूरत है कि हद और हक़ तय करने वाली एक ऐसी हस्ती हो जिसका लगाव सब इन्सानों से एक जैसा हो। अब उसी की तरफ़ से लागू किया गया क़ानून ऐसा हो सकता है कि सब एक तरह से उस पर चले और वही क़ानून कि जो सबके लिए आज़ादी की 'हद' को तय कर दे, उसी का नाम 'मज़हब' है और उसका लागू करने वाला, 'खुदा' है, जिसका ताल्लुक़ पूरी दुनिया के साथ एक जैसा है।

मज़हब ज़मीर (अंतरात्मा) और दिल पर राज करता है और दिल का राज जिस्म के सारे हिस्से यानी हाथ, पैर, आँख, नाक, कान वग़ैरह पर है, इसलिए सारे इन्सान के काम और अ़मल हदों और बन्धनो के तले पूरा करते हैं।

मज़हब से अलग होकर हम किसी ताक़तवर

से ये माँग करने का हक़ नहीं रखते कि वह अपनी ताक़त से फ़ायदा न उठाये, क्योंकि दुनिया की हर चीज़ फ़ायदा उठाने के लिए है और फ़ायदा जो कुछ है वह इसी दुनिया का थोड़ी देर का फ़ायदा होता है। एक आदमी जिसके बाज़ू में ताक़त है, तलवार में धार है, सामने कमज़ोर है और इसे पॉव तले रौंदने से एक बहुत बड़े फ़ायदे की उम्मीद है, अब वह ताक़तवर किस सहारे पर अपना हाथ रोके और किस उम्मीद पर अपने मक़सद को पाने से पीछे हट जाए ? मगर मज़हब वह है जो इन्सान के रोबदाब, हुकूमत के जोश और बड़ाई के घमन्ड को तोड़ देता है, वह इन्सान की निगाह को ऊँचा करता है, और उस वक़्ती फ़ायदे के आगे एक दूसरी हार-जीत ख़्याल पैदा करता है। अब मज़हब ही के सहारे एक ताक़तवर इन्सान ताक़त के नाजाएज़ इस्तेमाल से पीछे हट जाता है और कमज़ोर लोगों को साँस लेने का मौक़ा मिल सकता है।

मज़हब दुनिया में अमन चैन और सामूहिक (Social) सिस्टम के बाक़ी रहने का अकेला ज़िम्मेदार है। ये और बात है कि दुनिया में मज़हब ही के नाम पर दंगे और बवाल हो और लड़ाई-झगड़ा ख़ड़ा किया जाए, मगर मज़हब इसका जिम्मेदार नहीं हो सकता, न उसकी वजह से मज़हब ख़त्म किये जाने के लायक़ है। ये तो अपनी निगाह की ग़लती होगी कि इन्सान नक़ली और असली में फ़र्क न कर सके। इन्सान अगर इमीटेशन पत्थर से धोखा खा जाए तो हीरे को बुरा न कहे बल्कि अपनी निगाह की कमज़ोरी मान ले। जैसे किसी चीज़ पर सिर्फ़ सोने का पानी चढ़ा हो और उसे आप असली सोना समझ लें, इसी तरह अगर मज़हब के नाम से किसी धोखे के जाल में फँस जाएँ तो मज़हब की शिकायत न करें बल्कि अपनी गलती करने वाली निगाह की कमी समझे।

इन्सान को चाहिए, कि सोचे, समझे और ग़ौर करे, देखे कि कौन सा मज़हब सही है और कौन ग़लत। कौन सी आवाज़ जो मज़हब के नाम से उठाई गयी, सच्चाई की बुनियाद पर है और कौन इमीटेशन, चलत्तर और धोखेबाज़ी पर।

इसीलिए सच्चाई की खोज का दरवाज़ा सबके लिए खुला रखा गया है, और किसी के लिए सिर्फ़ बाप-दादा के रास्ते पर चलना और उनके अपनाये हुए पंथ धर्म की लाज को, ज़िम्मेदारी से हल्का होने के लिए काफ़ी नहीं समझा गया है।

दूसरा अध्याय

विश्वास मानना:

इसलामी विश्वास का असर कर्म पर:

आदमी जो कुछ करता है वह सोच और मानसिकता/मेन्टलिटी के हिसाब से करता है उसके विचार और विश्वास स इस्लाम ने जो मानने को कहा है वह सब ऐसे हैं कि जो इन्सान को इन्सान वाला बनाते हैं और उस के काम में ऊँचाई और अच्छाई पैदा करते हैं।

तौहीद (ईश्वर को एक मानना) :

मानव के लिए मज़हब की तरफ़ से जो सबसे पहला तोहफ़ा है वह ख़ुदा को एक मानने का है, इसकी वजह से सभी इन्सान एक रंग में रंग जाते हैं और एक हालत में डूब जाते हैं । इन्सान जूट समूह में तरह तरह से अलगाव है और इसलिए एक वर्ग दूसऱे को नीच समझता है। इनमें आपस में मोहब्बत नहीं होती क्योंकि किसी चीज़ में वह अपने को दूसरों के साथ एकजुट नहीं सोचते, लेकिन अगर यह समझ पैदा हो जाए कि हम सब एक ही ख़ुदा के बन्दे (दास) हैं तो सब एक दूसरे के साथ अपना पन और एकता का एहसास करने लगें ।

दुनिया में ताक़तवर कमज़ोर पर इसलिए हाथ उठाता है क्योंकि वह अपने से ज़्यादा ताक़तवर किसी को नहीं समझता और कमज़ोर का दिल इसलिए टूट जाता है क्योंकि वह अपने पीछे किसी को मदद करने वाला नहीं देखता। ख़ुदा को एक मानना ताक़तवर के घमण्डी सर को झुका देता है और उसके दिल में एक छिपी हुई ताक़त का डर पैदा करता है और कमज़ोर की निगाह को उठाता है, और उसके दिल में आस की लहर पैदा करता है। इसका नतीजा ये होता है कि अलग-अलग ताक़तों का पल्ला बराबर (सन्तुलित) हो जाता है और इस जीवन की खींचतान में कमज़ोर भी ताक़तवर के साथ कोशिश के क़दम उठाता है ।

एक ख़ुदा को मानने से बेकल दिल को चैन, टूटे हुए दिल को आसरा, निराशों में ढारस मिलती है, वस्तुवादी की ज़िन्दगी एक ऐसी नाव है जिसका कोई किनारा नहीं है मगर ख़ुदा के भक्त की नाव कितने ही तूफ़ान में हो और थपेड़ों में करवटें ले रही हो, मगर फिर भी वह उम्मीद से भरी है क्योंकि नाव के लिये एक किनारा है और उसका एक खेवनहार है और वह परदे में छुपा हुआ ख़ुदा है।

ख़ुदा का ज्ञानः

फ़िलास्फ़र और वैज्ञानिकों ने ख़ुदा के ज्ञान को आम सूत्रों के साथ सीमित कर दिया है इसलिए कि किसी बात के तमाम पहलुओं में बदलाव होता रहता है उनके मुताबिक़ ख़ुदा की ज़ात में भी बदलाव ज़रूरी होगा। ये दलील ग़लत है क्योंकि मालूमात के बदलने से ज्ञान में बदलाव ज़रूरी नहीं है, और इसलिए ईश्वर की ज़ात में भी बदलाव होना ज़रूरी नहीं बनता, बहरहाल हमारे मज़हब की शिक्षा इससे अलग है ।

मजहब कहता है ख़ुदा को हर छोटी से छोटी चीज़ को जानता है। अमीरुल मोमिनीन हज़रत अली(अ०) ने 'नहजुल बलाग़ा' में इस को जिस तरह बयान किया है, वह एक ऐसा अन्दाज़ जो दिमाग़ में इस सच्चाई को बिल्कुल बिठा देता है। वास्तव में तो ये सिर्फ़ एक वाक्य है कि "ख़ुदा हर बात का जानने वाला है मगर इसको सिर्फ़ सुन लेने से दिल-दिमाग़ पर वह असर नहीं पड़ता तो प्रयोग और विश्लेषण (Experiment and Analysis) से मामूली और बिल्कुल छोटी चीज़ों को विस्तार के साथ बयान करने पर पड़ता है।

"अबुल अइम्मा के तालीमात" (इमामों के पिता की शिक्षाऐं) रिसाले में जो इमामिया मिशन से छापा गया है, अमीरुल मोमिनीन (अ०) के वह क़ौल (सूक्तियाँ) लिखे गये हैं। ख़ुदावन्दे आलम के ज्ञान व ख़बर के एहसास से इन्सान की अ़मली (काम वाली) ज़िन्दगी पर बहुत बड़ा असर पड़ता है ।

ग़ौर करने पर मालूम होगा कि गुनाह पाप के लिए इन्सान को प्राकृतिक रूप से एक चाह होती है कि इन्सान मामूली-मामूली आदमियों से छिपता फिरता है कि उसको गुनाह करते देख न ले, अगर वह अपने जुर्म का कहीं बयान सुन लेता है तो दिल धक से हो जाता है और चेहरे पर हवाईयां उड़ने लगती है। ये उन लोगों की बात है जिनमें गुनाह का एहसास बाक़ी हो और गुनाह को फ़ख़्र के साथ न करते हों, ख़ास तौर से उस इन्सान से जिसका जुर्म हो उससे तो बहुत ज़्यादा छिपने की कोशिश करता है, किसी को हम बुरा कह रहे हों और वह आता हुआ दिख जाए तो फ़ौरन ज़बान को रोक लेंगे चुप हो जाएंगे कि कहीं उसको पता न चल जाए, शर्त यह है कि उस आदमी का कुछ भी लेहाज़, बड़ाई और इ़ज़्ज़त इसकी निगाह में हो, फिर जब मामूली लोगों का यह हाल हो तो अगर किसी को इस बात का निश्चय हो कि ख़ुदा है जो उसके कामो को देख भी रहा है और हर वक़्त वह उसके कामों की देखरेख कर रहा है और उसकी ज़रा-ज़रा सी बात वह जानता है तो क्या यह हो सकता है कि इन्सान गुनाह भी करें ।

इसी बुनियाद पर ख़ुदा ने क़ुर्आन मजीद में अपने ज्ञान का बयान ज़्यादातर इन्सान के कामों ही को लेकर किया है जैसे-"बेशक अल्लाह देखता है वह जो लोग करते हैं। बेशक जो लोग करते हैं अल्लाह देखता है। बेशक अल्लाह जानता है जो लोग करते हैं।" और इन्सान की छिपाने की ख़्वाहिश को कि वह अपने गुनाह को दूसरे इन्सानों से छिपाता फिरता है, को बयान करते हुए कहा गया है : "ये लोग इन्सानों से छिपते फिरते हैं, और अल्लाह से नहीं छिपते, जबकि वह उनके साथ होता है, जबकि वह रातों को ऐसे मशवरे करते हैं जो ख़ुदा को पसन्द नहीं अैर ख़ुदा उनके कामों से पूरी तरह अवगत है"।

दुनिया के हर हिस्से में दूसरों को छल कपट, बेईमानी, सताना, चोरी, बलात्कार, इन सब की वजह ये है कि इन्सान अपने दिल से सचमें ख़ुदा को हर जगह मौजूद सर्वव्यापी और सर्वदर्शी नहीं समझता । अगर पूरी दुनिया के दिमाग़ में यह बात बैठ जाये कि ख़ुदा हर जगह मौजूद है और सब कुछ देख रहा है तो दुनिया सुख-चैन और शान्ति का पालना बन जाये और हर तरह की बुराईयाँ और कुकर्म बन्द हो जायें ।

(..........जारी)